International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित संघर्षरत महिला किसान

स्टेनी फ्रान्सिस[1], डॉ.ए.के बिन्दु[2]

[1]शोधार्थी, (महाराजास् कॉलेज,एरणाकुलम), महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय, कोट्टयम, केरल
[2]सह आचार्या , हिन्दी विभाग, कोचीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

शोध सार :

वर्तमान समय में आधुनिकीकरण, औद्योगिकरण और बाज़ारवाद के भँवर में फँसे किसान अपनी प्रतिष्ठा को बचाने केलिए रोज़ संघर्ष कर रहे हैं। प्रतिदिन किसानों से उनकी ज़मीन छीनी जा रही है। अन्नदाता कहलाने वाला किसान आज स्वयं भूखा है। तत्कालीन साहित्य में किसान जीवन की त्रासदी को उभारने की कोशिश साहित्यकारों ने किया है। इसके अलावा साहित्यकारों ने महिला किसान एवं किसान पत्नी की भूमिका को एहम मानते हुए उन्हें साहित्य जगत में विशेष स्थान दिया है। महिला किसान एवं किसान पत्नियों की समस्याओं एवं संघर्षों को वाणी देने में समकालीन हिंदी उपन्यास सक्षम हैं।

बीज शब्द : महिला किसान, खेती, ज़मीन, किसान पत्नी, बराबरी, आत्महत्या, शोषण, संघर्ष,मजदूर , समाज सेविका , हिन्दी उपन्यास।

"उत्तम खेती मध्यम बान
निकृष्ट चाकरी भीख निदान"

यह प्राचीन कहावत कृषि की उत्कृष्टता को दर्शाती है तथा इसके अनुसार हमारे समाज में कृषि को सबसे बेहत्तर कार्य, व्यवसाय को मध्यम दर्ज का कार्य और चाकरी जैसी नौकरी को निकृष्ट कार्य माना जाता है। भारत में सिंधुघाटी सभ्यता से कृषि चली आ रही है, और कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। किसान को भारत में अन्नदाता का दर्जा दिया जाता है। लेकिन यही अन्नदाता अलग-अलग कालखण्डों में शोषण का शिकार बनता जा रहा है। अंग्रेज़ों के आने से पहले कर(tax) के रूप में राजा-महाराजा किसानों के मेहनत पर एयाशि करते थे तो अंग्रेज़ लोग किसानों से एक निश्चित रकम मालगुज़ारी के रूप में वसूल करते थे। स्वतंत्रता के बाद भी यह शोषण चक्र चलता रहा, सिर्फ़ शोषकों के रूप बदल गए थे। सरकार,

बैंक, दलाल, पूँजीपति और बहुराष्ट्रीय कंपनीयाँ मिलकर किसान के गला घोंट रहे हैं। 21 वीं सदी में हमने किसानों को समस्याओं की कटघरे में खड़ा किया, जिससे वे चाहकर भी कभी फराह नहीं हो सकते। भूमण्डलीकरण एवं निजीकरण की आँधी में उखडे किसान आज आत्महत्या करने केलिए मज़बूर हो गये हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वर्तमान समय में किसान मरते हुए एक प्रजाति बन गया है। किसानों की आत्महत्याएँ दिन ब दिन बढ़ते जा रही हैं और इसका कोई स्थायी समाधान निकल नहीं रहा है। सत्ता द्वारा सदियों से किसानों की वाणी को दबाने की कोशिश की जा रही हैं। उनके संघर्ष और विद्रोह को जनसमक्ष लाने का श्रेय साहित्य का है। किसान को साहित्य के केंद्र में लाने का श्रेय प्रेमचंद को दिया जाता है। गोदान में महाजनी सभ्यता के शोषण चक्र में पिसता होरी और उसके परिवार का चित्रण करते हुए किसान संघर्ष को दिखाना ही उपन्यासकार का लक्ष्य रहा है। इसके अलावा परती परिकथा, सोनामाटी, डूब, ज़मीन, हलफनामे, आखिरी छलाँग, फाँस, कालीचाट, तेरा संगी कोई नहीं, अकाल में उत्सव, यह गाँव बिकाऊ है, ढलती सूरज का साँझ आदि उपन्यासों में भी किसानी जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है।

कृषि क्षेत्र में महिलाओं का योगदान सराहनीय है। खेतों में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करनेवाली महिला किसान भारत की शान हैं। महिला किसान घर-गृहस्थी और खेती-बाड़ी का काम एक साथ करती हैं। हमारे देश की महिलाएँ वर्षों से खेती करती आयी है। वे बुवाई, रोपाई, सिंचाई, निराई, कटाई, ढुलाई, बंधाई जैसे कृषि से संबंधित सारे काम करती हैं। इसके अलावा पशुपालन, मछलीपालन, मधुमक्खीपालन जैसे क्षेत्रों में भी उन्होंने अपना काबीलियत का परिचय दिया है। वर्षों पहले जो काम केवल पुरूष करते थे वह काम अब महिलाएँ करने लगी हैं। खेतीबाड़ी के इतना सारा काम करने के बावजूद भी वे मुख्यधारा में शामिल नहीं हैं। दफ्तर जानेवाली महिलाएँ हमेशा से कामकाजी महिलाओं की छवि रही हैं, खेतों में कार्यरत महिला किसानों को नौकरीपेशा महिलाओं की श्रेणी में शामिल नहीं किया गया। वर्तमान समय में कृषि संकट एक गंभीर समस्या है। यह सत्य है कि अंग्रेजी शासन काल में तथा स्वतंत्रता के बाद भी किसान शोषण का शिकार तो होता रहा, पर उसने आत्महत्या करने के बारे में कतयी सोचा नहीं था । पर यही किसान उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण की दौर में नितांत अकेला पड़ गया। किसान को अपार धैर्य और साहस का प्रतीक माना जाता है। किंतु वही किसान संघर्षों से लड़ने के बजाय आत्महत्या का रास्ता चुनने केलिए विवश हो गया। पुरूष किसानों की तरह महिला किसान भी कृषि समस्याओं से जूझ रही हैं। पर खेती की चुनौतियों की सामना करने का साहस उनके पास हैं। वे किसी भी मामले में पुरुष किसानों से कम नहीं हैं, चाहे उनके साथ कितना भी भेदभाव किया जाए।

कृषि व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका एवं अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को साहित्य में भी स्थान मिला है। प्रेमचंद ने धनिया के माध्यम से एक सशक्त महिला किसान को चित्रित करने का प्रयास किया है। 'गोदान' में किसान चेतना होरी एवं धनिया के संघर्ष को मिलाकर बनती है। गोदान में होरी जितना

संघर्ष करता है उतना संघर्ष धनिया भी करती है। होरी की पत्नी धनिया महिला किसानों का प्रतिनिधित्व करती है। वह न कर्मक्षेत्र में भयभीत होती है न ही उसने कभी संघर्षों से मुँह मोड़ा है। उसमें अपार साहस और आत्मविश्वास भरा हुआ है। पंचों द्वारा दण्ड सुनाने पर होरी बिना कुछ कहे उस निर्णय को स्वीकार कर लेता है पर धनिया क्रोधित होती है और दण्ड के तौर पर मुट्ठी भर अनाज देने केलिए इनकार कर देती है। होरी दब्बू प्रकृति का व्यक्ति है तो धनिया में विद्रोह का भाव देखने को मिलता है। परिस्थितियों की वज़ह से किसान से मज़दूर बने होरी का साथ धनिया देती रही। होरी का पूरा जीवन कर्ज़ में डूबा रहा। फिर भी अंत में गोदान करवाने केलिए कर्ज़ लेने वाली धनिया का चित्रण प्रेमचंद ने बड़ी संजीदगी के साथ किया है। प्रेमचंद के किसान स्त्री पात्रों में धनिया सर्वश्रेष्ठ है। परवर्ति उपन्यासों में भी किसान पत्नियों और महिला किसानों के संघर्षों का चित्रण हुआ है। जयशंकर प्रसाद के उपन्यास 'तितली' में किसानों के उत्थान का नेतृत्व करनेवाली 'तितली', मैत्रेयी पुष्पा के चाक उपन्यास की किसान पत्नी 'सारंग' जैसी महिलाएँ सदा यादगार हैं। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में यह संघर्ष और अधिक उभर कर आया है। आखिरी छलाँग, कालीचाट, फाँस, तेरा संगी कोई नहीं, अकाल में उत्सव, यह गाँव बिकाऊ है, ढलते साँझ का सूरज जैसे उपन्यासों में इसका ज्वलंत स्वरूप दिखाया गया है।

ऐसा कहा जाता है कि एक सफल पुरूष के पीछे महिला का हाथ होता है। किसान के मामले में यह बात सटीक बन जाती है। किसान केलिए उनकी पत्नी प्रेरणा, साहस एवं आशा की किरण है, जिस पर उनका जीवन टिका हुआ है। 'कालीचाट' उपन्यास के माध्यम से सुनील चतुर्वेदी ऐसी कई महिला चरित्रों से हमारा परिचय करवाते हैं जो पुरूषों से किसी भी मामले में कम नहीं हैं। बराबरी की हक केलिए प्रयत्न करनेवाली, अधिकारों केलिए लड़नेवाली, शोषण के विरूद्ध आवाज़ उठानेवाली, अपने परिवार केलिए प्राण तक न्योच्छावर करनेवाली तथा खेती-किसानी और अपनी ज़मीन पर मर मिटनेवाली ऐसी नारी पात्र इस उपन्यास में उभर कर आई हैं, जैसे रेश्मी, रुकमणि, यासमिन आदि। इस उपन्यास में साहिबू के अपाहिज होने के बाद रेश्मी घर बार और खेती किसानी की सारी जिम्मेदारीयाँ अपने कंधों पर उठा लेती है। अपने पति का साथ देते हुए सुख दुःख की क्षणों में उनका ढाल बनकर खड़ी होती है। उपन्यास में यास्मिन हमें एक दरिद्र किसान की पत्नी की याद दिलाती है जो हमेशा अपने पति का सहारा बनी रही। यूनूस, यास्मिन और बच्चों ने मिलकर कुआँ खोदा था क्योंकि मज़दूरी देना का पैसा उनके पास नहीं था। उसी तरह कुआँ खोदते समय काली चट्टान का सामना करते वक्त ठड़े पडे युनूस को यास्मिन धैर्य देती हुई दिखाई देती है। वह टोटा लगवाने केलिए कर्ज लेने का उपाय देती है। किसानी जीवन से पराजित होकर निराशा में रहनेवाले युनूस को वह आशा की ओर ले जाती है। उसी तरह युनूस मुर्गीपालन, पशुपालन भी करता हैं, इन सभी कामों में यास्मिन एक किसान पत्नी का दायित्व निभाते हुए नज़र आती है।

'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में बलेसर का दस बीघे की फसल आग में जल जाती है। घर पहूँचकर पत्नी के पीले, मुरझाये और उदास चेहरा देखकर बलेसर खुद का दर्द भूल जाता है। "वे जानते थे, कृषि जीवन की उनकी सफलता और खुशहाली के पीछे घर के अन्दर उनकी पत्नी की भूमिका थी। उनकी पत्नी एक किसान की कुशल गृहणी और सह धर्मिणी थी"[1]। बलेसर से पत्नी की ऐसी हालत देखा न गया और तुरंत उसे सांत्वना देते हुए कहता है कि थोड़ा सा धान जल गया था और कृषि में ऐसा होता रहता है। बेटों के होते हुए भी बलेसर अकेले खेती-बाड़ी करता था, ऐसे में धान की खेत में आग लगने से उनका सारा मेहनत बेकार जाता है। किसान की पत्नी होने के नाते फसल नष्ट होने का दर्द वह बखूबी समझती है। बेटे केलिए वधू ढूँढते समय बलेसर शर्त रखते है कि किसान परिवार की लड़की से ही कुलराखन की शादी करवाएगा। "बलेसर इस तत्थ से अवगत थे कि जिस किसान की पत्नी कृषि जीवन से जुड़ी होती है, कृषि के सुख-दुःख को ही अपना सुख-दुःख मानती है, उसी के घर की खेती कायम रह पाती है, उसी के खेती चमकती और उजियाती रहती है। पति के शहरवाइया मन को भी वही खेती की डोर से बाँधे रखती है"[2]। दरअसल वे बहू में अपनी पत्नी की छवि देखना चाहते हैं। जिस तरह बलेसर की पत्नी ने उन्हें घर-गृहस्थी और खेती-बाड़ी में साथ दिया था उसी तरह उन्हें एक किसान परिवार की लड़की को कुलराखन की साथी के रूप में चाहिए थी। बलेसर ऐसा विश्वास रखते थे कि बेटे की खेती के प्रति नज़रिये को बदलने में किसान परिवार की लड़की ही कामियाब होगी। बाद में कुलराखन की शादी के मामले में बलेसर ने पत्नी की राय पर अपना निर्णय बदल दिया था। उपन्यासकार लिखते है "बलेसर अपनी पत्नी की सूझबूझ और समझदारी से अवगत थे। घर में ऐसी पत्नी की उपस्थिति का ही परिणाम था कि अपनी खेती के प्रति वे समर्पित थे। कृषि से लेकर घर-परिवार की समस्याओं पर भी पत्नी का सुझाव उन्हें अक्सर उपयुक्त जान पड़ता"[3]। ऐसी पत्नी को पाकर वे कृतज्ञ थे। 'आखिरी छलाँग' में पहलवान बेटे के इंजीनियरिंग की फीस भरने केलिए छः हज़ार का बाँस और आठ हज़ार की पड़िया बेचता है और रिश्तेदार भी उनको आर्थिक सहायता देते है। इसके बावजूद भी पहलवान पैसा इकट्ठा नहीं कर पाते है तो पत्नी उनसे गहने बेचने की पेशकश करती है। पहलवान जानता है कि गहनों को बेचने से स्त्री को कितना दुःख पहूँचती है। पर वह लाचार है। पत्नी को पता है कि "पिछले कुछ बरस से इनके मन का बोझ धीरे-धीरे बढ़ रहा है।.....मन रोज़-रोज़ छोटा होता जा रहा है। पहले इनके अट्टहास को बीघा भर की दूरी से सुना जा सकता था। अब हँसी निकलती भी है तो बेआवाज़"[4]। कृषि समस्याओं के चलते पहलवान अपने में ही सिमट गया है, अकेले में बड़बड़ाता रहता है और पत्नी से ज्यादा बातचीत नहीं करता है। पत्नी पहलवान के इस आचरण से चिंतित अवश्य है, पर वह उनके सुख-दुःखों में उनकी सहचारी रही। 'अकाल में उत्सव' में रामप्रसाद का साथ देनेवाली उनकी पत्नी कमला के बारे में उपन्यासकार लिखते है "किसान की पत्नी वैसे तो बात-बात में रो पड़ती है लेकिन अगर उसका पति रो रहा हो, तो उसके आँसू सूख जाते हैं। ज़ब्त

कर लेती है वह अपने अंदर के सारे दर्द को"[5]। पैसा जमा न करने की वज़ह से बिजली विभाग द्वारा कुर्की करने की नौबत आती है तो रामप्रसाद परेशान होता है। रामप्रसाद को चिंतित देखकर कमला अपने पास बची हुई आख़िरी ज़ेवर तोड़ी सुनार के पास गिरवी रखने को कहती है। तोड़ी तो रामप्रसाद की माँ का था और ब्याह कर आने पर माँ ने कमला को पहनाया था। तबसे यह तोड़ी उसकी पैरों में थी। रामप्रसाद कहता है कि गिरवी रखी हुई चीज़ कभी वापस नहीं आता और कमला कहती भी है कि अगर तोड़ी कर्ज में डूब जाए तो जाए। साथ में यह भी कहती है कि मोटी तोड़ी उससे पहना नहीं जाता, बदले में उसे पायल दिलवा दे। हालाँकि यह सब बातें उसने रामप्रसाद को दिलासा देने केलिए कही थी। पुरानी स्मृतियों को याद करते हुए जब रामप्रसाद रोने लगता है तो वह अपना दुःख भूलकर उन्हें सांत्वना देती है। दो एकड़ ज़मीन से पाँच परिवार के सदस्यों का गुज़ारा करना मुश्किल है, इसलिए रामप्रसाद की "पत्नी कुछ दूसरों के घरों का कूटना-पीसना कर लेती थी। फ़सल कटाई, बुवाई और निंदाई के समय जब अपने खेत का काम हो जाता, तो बड़े किसानों के खेतों में जाकर दिहाड़की से काम कर लेती थी। जब शादी होकर आयी थी, तब ससुर ने कभी अपने खेतों पर भी काम केलिए नहीं जाने दिया लेकिन, अब सुखों के छीजने का समय था"[6]। कमला यहाँ आर्थिक तंगी के क्षणों में पति का साथ देनेवाली एक सशक्त किसान पत्नी के रूप में उभर कर आती है।

कृषि व्यवस्था और श्रम संस्कृति का मूलधार स्त्री है। पर भारतीय समाज ने किसान की पत्नी को कभी किसान माना ही नहीं है।'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में राजेश अपने दोस्तों से कहता है "खेती किसानी में उनकी मेहनत और श्रम के बिना फसल होना संभव ही नहीं,फिर भी उनको कोई किसान महिला नहीं कहता"[7]। किसान महिला की दोहरी भूमिका होती है। वह पति के साथ खेतों में काम करने का साथ-साथ घर भी संभालती है। लेकिन उसकी मेहनत को नज़रअंदाज किया जाता है। अघोघ के अनुसार "आज तक उन तीनों ने किसान महिला शब्द किसी किताब में भी नहीं पढ़ा। हाँ सरकारी आयोजनों और पुरस्कारों को छोड़कर कभी किसान महिला शब्द देखा या सुना नहीं"[8]। नँगला गाँव के किसान पंचायत में महिलाओं की उपस्थिति कम दिखायी देती है। लेकिन अघोघ द्वारा चलाये गए किसान आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी देखने को मिलती है।

"Invisible and invincible. Two words close in spelling but worlds apart in meaning. They both narrate the story of the history of women farming and rising food. Until as recently as the late 20th century, women's farm work and accomplishments never received much recognition when considered against the male-dominated paradigm"[9]. अदृश्यता और अजेयता ये दोनों शब्द महिला किसानों के संदर्भ में सटीक बैठती है। वह अदृश्य इसलिए है कि समाज उसे किसान नहीं मानता और वह अजेय इसलिए है कि संघर्ष से डरते नहीं है। अदृश्य होकर भी वह अपनी भूमिका निभा रही है, मुख्यधारा में न होने के बावजूद कृषि क्षेत्र में अपना योगदान दे रही है, चाहे समाज उसे वह हक नहीं दे रही है जिसका वह अधिकारिणी है।

महिला किसानों को किसान का दर्जा नहीं दिया जाता, बल्कि उन्हें मज़दूर के रूप में देखा जाता है। आधे से ज्यादा कृषि कार्यों का भार कंधे पर उठाने के बावजूद भी ये महिलाएँ किसान होने का दर्जा प्राप्त नहीं कर पाती। उनकी पहचान गृहणी, श्रमिक या पुरुष किसानों की सहायिका के रूप में होती है। अंकिता जैन लिखती है "वे मेहनत उतनी ही करती है या शायद उससे ज्यादा भी लेकिन उन्हें मेहनताना बराबर नहीं मिलता, क्योंकि शायद महिलाओं को पुरूषों के बराबर मंजूरी देने का प्रावधान नहीं है। या उन्हें उस लायक नहीं समझा जाता। या हमारे देश में मेहनत को ताकत से तौला जाता है"[10]। 'ढलती साँझ का सूरज' नामक उपन्यास में महिला किसान सुधा मणि की आत्महत्या के बाद उसकी बेटी को मुआवज़ा नही मिलती है। "क्योंकि वह एक औरत थी इसलिए कोई उसे किसान ही नहीं मानता। एक औरत किसान की पत्नी हो सकती है ख़ुद किसान नहीं"[11]। यह महिला किसान की नियति है। समाज जब उन्हें किसान मानने केलिए तैयार नहीं है इसलिए वे अपने हक केलिए लड़ते नहीं है और कभी कभी वे भूल जाते हैं कि वे भी किसान हैं। फाँस उपन्यास में जब शुभा विजयेन्द्र से पूछती है कि क्या महिलाएँ भी किसान होती हैं? तो विजयेन्द्र उनकी शंका का निवारण करते हुए कहता है कि "अरे! महिलाएँ क्या नहीं कर सकतीं, बल्कि महिला किसान तो खेती के साथ बाकी जिम्मेदारियाँ भी संभालती हैं- परिवार, रसोई, बच्चों की भी और मर्द की सारी जिम्मेदारियाँ भी। आज रसोई में क्या बनेगा से लेकर किस खेत में बोना होगा, सब्जी में कौन-सा मसाला पड़ेगा से लेकर किस फसल में कौन-सी खाद पड़ेगी, बच्चे पैदा करने से लेकर सन्तानों तक के लिए सारे खर्च जुटाने तक.."[12]। विजयेन्द्र यह भी कहता है कि महिला किसानों की बात सोचने पर उनका सिर श्रद्धा से झुक जाता है। महिला किसानों को खेती का पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं मिलता है और उनकी हुनर को कभी प्रोत्साहित नहीं किया जाता है। मंडियों में उनके साथ भेदभाव किया जाता है। उपज केलिए उचित मूल्य नहीं मिलता। ऐसी परिस्थितियों में स्त्री और किसान होने के नाते महिला किसान दोहरे शोषण का सज़ा भोग रहे हैं।

वर्तमान समय में किसानों के प्रतिदिन बिगड़ते भविष्य समाज के सामने प्रश्नचिन्ह बनकर खड़ा है। ज़मीन का मालिकाना हक महिलाओं की तुलना में पुरूषों के पास कई गुना हैं। ज़मीन एवं जायदादों के मामले में आज भी पुरूषों का वर्चस्व हैं यानि ज़मीन एवं जायदाद उनके नाम पर है, क्रय-विक्रय करने का पूर्ण अधिकार उन पर निषिप्त है। आँकड़ों के अनुसार केवल 13 प्रतिशत स्त्रियों के पास कृषि करने केलिए खुद का ज़मीन है। महिलाओं के नाम पर भूमि इसलिए कम है कि यहाँ विरासत मुख्यतः बेटों को दिया जाता है। 'कालीचाट' उपन्यास में रुक्मिणी के पिता बँटवारा करते समय जमीन का एक हिस्सा उसकी नाम पर देने की बात करता है तो घर में कोलाहल मच जाता है। माँ रुक्मिणी से कहती है "आज तक गाम में ऐसी कोई ने नी करी ऐसी है। थारा बाप ने करी है। बाप की ज़मीन में छोरी को हिस्सो और रुक्का...तू कईं कम है तैने तो सग्गा भई का ख़िलाफ़ बाप के ऐसी पट्टी पढ़ाई कि सफा पागल हो गया

डोकरो..या समझ ले कि आज से तू मर गई म्हारा लिए"[13]। पिता के इस फैसले से माँ नाराज़ है और उनके अनुसार पिताजी की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है और उन्होंने जो किया है वह आज तक सिंद्रानी में किसी ने नहीं किया है। पर विडंबना यह है कि माँ सारा जमीन बेटे के नाम करवाना चाहती है जिसे खेती-बाड़ी में कोई दिलचस्पी नहीं है।

जमीन केलिए किसान का मोह उनका स्वभावगत गुण है। किसान धरती को माँ मानते हैं। अपनी भूमि से उखड़ जाना उनके लिए मृत्यु से कम नहीं है। वह हर हाल में अपनी जमीन को बचाने की कोशिश में लगा रहता है। 'कालीचाट' उपन्यास में साहिबू के जाने के बाद भीमा बा द्वारा रेश्मी की ज़मीन हड़पने की कोशिश करती है। रेश्मी ज़मीन वापस पाने केलिए कलक्टर से शिकायत करती है। वह किसी भी हाल में अपने ज़मीन गँवाना नहीं चाहती थी। वह ज़मीन साहिबू का छोड़ा हुआ आखिरी निशानी था। उसी तरह सिद्रानी में अनार पैदा करने वाले कंपनी का ऑफिस खुलने पर बहुतेरे किसान अपनी ज़मीन कंपनी को बेच देते हैं। रेश्मी का बेटा सुरेश भी ज़मीन बेचकर फार्म मैनेजर की नौकरी और मोटर साइकिल पाना चाहता था। लेकिन रेश्मी ज़मीन बेचना नहीं चाहती थी। बाद में सुरेश को संविदा शिक्षक के रूप में नौकरी मिलने पर वह रेश्मी से पूछे बिना सुरेश ज़मीन कंपनी को बेच देता है और रेश्मी अपनी मानसिक संतुलन खो बैठती है। 'फाँस' उपन्यास में शकुन पति की आत्महत्या के बाद दो डेसिमल खेती अपने लिए रखकर उसमें खेती करती है। नीलगायों से फसल की रखवाली केलिए रात में पहरा देती है। यहाँ तक बाघ से भी लड़ जाती है। ज़मीन के प्रति महिला किसानों का लगाव यहाँ द्रष्टव्य है।

'कालीचाट' उपन्यास की रेश्मी और फाँस की शकुन दोनों समाजसेविका की भूमिका भी निभाती हैं। सामाजिक कुरूतियों के खिलाफ़ आवाज़ उठाने में वे हिचकती नहीं है। शकुन ऐसी महिला किसान है जो भट्ठी भंजक दल का आविष्कार करके नारायण सेठ के शाराब की दूकान बंद करवा देती है। इस तरह वह दूसरे किसान स्त्रियों का जीवन उजड़ने से बचा लेती है। उसी तरह रेश्मी गाँव में साक्षरता अभियान के तहत बड़े-बूढ़ों को शिक्षित करने केलिए भोपाल जाकर साक्षरता कक्षा चलाने केलिए प्रशिक्षण लेकर लौट आती हैं। दूसरी महिलाओं को शिक्षा द्वारा जागरित करने का प्रयत्न रेश्मी करती है। रुकमणि, शांता और दो-तीन नई उम्र की लड़कियाँ रेश्मी से शिक्षा ग्रहण करती हैं। बाद में ये नव शिक्षित महिलाएँ ही गाँव का शब्द बनकर उभर आती हैं। साक्षरता बदलाव की पहली सीढ़ी है और इसका भरपूर फायदा उठाने में महिलाएँ आगे थी। 'कालीचाट' उपन्यास में महिलाओं को स्वावलंबी बनाने केलिए स्त्रियों का बचत समूह बनाने और उन्हें अचार, पापड़, बड़ी, पिसे मसाले, अगरबत्ती, मोमबत्ती आदि बनाने का प्रशिक्षण देनेवाली सरकारी योजना का जिक्र मिलता है। पर उपन्यासकार बताते है कि ये योजना अव्यवहारिक हैं क्योंकि सरकार प्रशिक्षण तो देता है पर इन चीज़ों को बेचना का कोई प्रावधान नहीं बनाए गए थे।

पुरूष किसान आत्महत्याओं की तरह महिला किसान आत्महत्याएँ भी बढ़ रही हैं। 'फाँस' उपन्यास में अमला गाँव के किसान आशा आत्महत्या करती है। इसका कारण यह था कि अधिवृष्टि की वज़ह से धान की फसलें सड़ गयी थी, नीलगाय से तुअर नष्ट हुआ था और बिना पानी के कापूस भी सूख गये । मुआवज़ा केलिए वह पटवारी, ग्राम सेवक, बी.डी.ओ, डी.एम इत्यादि अधिकारियों के पास जाती है । लेकिन पैसा न मिलने के कारण वह पति को डी.एम के बंगले के बाहर अनशन केलिए बिठात है। फिर मंडी में कपास का उचित मूल्य न मिलने की वजह से कपास को घर पहूँचाया जाता है। बारिश में कपास भीगते देखकर आशा टूट जाती और कीटनाशक पीकर आत्महत्या करती है। अशा की बेटी कहती है "सोते जागते जब भी देखा, माँ को काम करते देखा"[14]। आशा के माध्यम से संजीव ने एक संघर्षशील महिला किसान का चित्र खींचा है।

किसान आत्महत्या देश केलिए एक चिंताजनक विषय है। किसानों के उत्थान केलिए आज के युवावर्ग प्रयत्नशील हैं। किसान आत्महत्याओं को रोकने केलिए खड़ी किसान की बेटी है 'फाँस' उपन्यास की कलावती। विजयेन्द्र के साथ मिलकर वह मंथन का आयोजन करती है, जिसमें भारत के अलग-अलग कोणों से आए किसान अपनी समस्याएँ एवं सपने एक दूसरे से साझा करते हैं। वह विजयेन्द्र से कहती है "मैं तुमसे बराबर कहती आयी, आज भी कह रही हूँ, अमेरिका जाओ, इजिप्ट जाओ, चाँद पर जाओ या कहीं और-जहाँ भी संजीवनी मिले, ढूँढ़कर लाओ। मेरा बाप मरा। तुम्हारा बाप मरा। तीन लाख मर चुके। अब आगे एक भी नहीं"[15]। दरअसल वह भविष्य में किसान आत्महत्याओं से रहित एक दुनिया का सपना देखती है। इसी सपने को साकार करने केलिए एक मिनी कृषि अनुसंधान केंद्र खोलती है।

महिला किसान वास्तव में अन्नपूर्णा है, जो पूरे विश्व का पेट भरती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान महिला किसानों ने खेतों और पशुपालन का कार्य संभाला था , जब पुरूष युद्ध लड़ रहे थे। विकासशील देशों में उत्पाद का सिंह भाग महिला किसानों के बलबूत्ते होते हैं। भारत विश्व में फलों और सब्जियों का दूसरे बड़े उत्पादक हैं। मेघालय, नागालैंड, उत्तर प्रदेश, जम्मू कश्मीर, सिक्किम आदि राज्यों के ग्रामीण महिलाओं केलिए बागवानी एक प्रमुख व्यवसाय है। फलों और सब्जियों का उपयोग अचार, जैम, जेली, सॉस,स्क्वैश आदि के निर्माण केलिए भी किया जाता है। कृषि क्षेत्र में 80 प्रतिशत महिलाएँ कार्यरत हैं जो किसान और मज़दूर के तौर पर खेती करती हैं। सरकार द्वारा 2011 में लागू किये गए महिला सशक्तीकरण योजना का मुख्य लक्ष्य कृषि में महिलाओं की भागीदारी और उत्पादकता को बढ़ाकर उन्हें सशक्त बनाना था। अगर कृषि में महिलाओं को प्राथमिकता दिया जाए तो, महिलाओं की बढ़ती जनसंख्या से कृषि उत्पादकता में बढ़ोत्तरी ला सकती है, साथ ही भूख और कुपोषण को भी रोका जा सकता है और देश के विकास का रूप भी बदल सकता है।

निष्कर्ष :

किसान स्त्री के संघर्षों को दर्शाने में इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यास सफल हुए हैं। क्योंकि भारतीय किसानों की खेती की दुर्दशा का चित्रण महिला किसानों के संघर्ष के ज़िक्र के बिना पूरा नहीं हो सकता । राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास की पारबती एक सशक्त महिला किसान की भूमिका निभाती है। खीती से लेकर परिवार, फसल बोने और काटने तक की कई जिम्मेदारियाँ उनके ऊपर थी। भीमसेन त्यागी के उपन्यास 'ज़मीन' की चम्पा, जयनंदन द्वारा रचित उपन्यास 'सल्तनत को सुनो गांववालों' की सल्तनत फुलेरा जैसी महिलाएँ किसानों की प्रगति केलिए निरंतर संघर्षरत दिखाई पड़ती है। बाँध की मरमत केलिए कदम उठाने ,आंदोलन चलाने और विकास समिति के गठन करने में अग्रणी है सल्तनत फुलेरा। अगर महिला किसानों को अच्छा अवसर और सुविधा मिले तो वे देश के विकास का परिदृश्य बदलने का सामर्थ्य रखती हैं। वे बाराबरी से मेहनत कर रही हैं। कुछ नया करने या सीखने के प्रति उनके मन में चाह हैं। "उन्हें यदि पुरुष किसान के बराबर खड़ा किया जाये, न सिर्फ़ मालिकाना हक़ के मामले में बल्कि किसान की छवि को भी हल जोतते एक पुरुष से हटाकर एक संयुक्त छवि के रूप में देखा जाये तो कृषि क्षेत्र में भी उज्जवल भविष्य और बेहतर सम्भावनाओं को प्राप्त किया जा सकेगा"[16]। आज महिला किसान अपने और परिवार के भविष्य को उज्जवल बना रही है। भले ही समस्याएँ एवं मुसीबतें महिला किसानों के आगे अनेक हैं, लेकिन ये महिला किसान संघर्ष से डरती नहीं हैं। वे अपने लक्ष्य पर अटल हैं। भले ही समाज उन्हें वह दर्जा नहीं दे रहा है, जो एक पुरूष किसान को प्राप्त हैं। पर वे एक सुनहरे भविष्य के सपने देख रहे हैं जब उन्हें बराबरी का हक प्राप्त होगा। वे चाहते हैं कि उनकी आवाज़ भी सुनाई पड़े। सदियों से दबायी गयी आवाज़ों को दुनिया के सामने लाने केलिए महिला किसान प्रयत्नरत हैं।इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में ऐसे संघर्षरत महिला किसानों की आवाज़ बुलंद हैं।

संदर्भ

1. तेरा संगी कोई नहीं,मिथिलेश्वर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2018,पृ.89
2. वही,पृ.34
3. वही,पृ.72
4. आखिरी छलाँग, शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2008,पृ.75
5. अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, शिवना पैपरबैक्स,2018,पृ.25
6. वही,पृ.10
7. यह गाँव बिकाऊ है, एम. एम चन्द्रा, डायमंड बुक्स, नई दिल्ली,2019,पृ.44
8. वही, पृ.44

9. Soil Sisters: A Toolkit for women farmers, Lisa Kivirist, New Society Publishers, Canada, 2016, pg.11
10. ओह रे! किसान, अंकिता जैन, वाणी प्रकाशन, 2020,पृ.172
11. ढलती सूरज का सांझ, मधु कांकरिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022,पृ.53
12. फाँस, संजीव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015,पृ.148
13. कालीचाट, सुनील चतुर्वेदी, अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, 2015,पृ.99
14. फाँस,पृ.182
15. वही,पृ.165
16. ओह रे! किसान, अंकिता जैन, वाणी प्रकाशन, 2020, पृ.173-174